परहित सरिस धर्म नहिं भाई

Parhit Saris Dharam Nahi Bhai

पशुता के बाद जब हमने मनुष्यता के क्षेत्र में पदार्पण किया, तो सर्वप्रथम सभी जाति और देश के मनीषियों ने मनुष्यता की रक्षा के लिए और इसे अधिक से अधिक सुन्दर बनाने के लिए अनेक प्रकार के गुणों तथा अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का निरूपण किया। इसके लिए अनेक प्रकार के विधि-विधान बनाए गए। सत्य-भाषण, सच्चरित्रता, परोपकार आदि को सर्व धर्म-सम्प्रदायों में समान महत्त्व दिया गया। इन्हीं सदाचरणों में से परहित भी एक है। दूसरे के हित साधन में सहायक होना ही 'परहित' कहलाया है। निःसंदेह परहित जैसा संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं। यही धर्मों का मूल प्राण है।

परहित दो शब्दों के मेल से बना है-पर+हित अर्थात् दूसरों की भलाई। यदि एक दूसरे के हित की भावना निहित है तो दूसरे में उपकार की भावना छिपी हुई है। अपने हित की चिन्ता न करते हुए दूसरों की भलाई करना ही सच्चे अर्थों में परोपकार है जो मानव-चरित्र का एक प्रधान अंग है। वास्तव में परोपकार एक दिव्य गुण है।

सामाजिक प्राणी होने के कारण हमारा सबसे बड़ा धर्म है कि हम स्वतः जियें और दूसरों को भी जीने दें। इस दृष्टिकोण से धर्म और परोपकार दोनों एक ही हैं। दोनों कोई भेद नहीं है। परन्तु यदि हम और विशाल रूप से देखें तो परहित में बदले की भावना नहीं होती है। हमारा हित कोई चाहे; परन्तु हम दूसरे का हित ही चाहेंगे; यही सच्चे परहित की भावना। यह मानवता की कसौटी है। वस्तुतः मानवता परहित से ही भाषित होती है जैसा कि स्वर्गीय राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी का कथन है: वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।'

सच्चा मानव तो वह है जो अपने सुख-दुःख के साथ दूसरों के सुख-दुःख को भी देखता है और अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों का हित-चिन्तन करता है। केवल अपने सुख-दुःख की चिन्ता करना, अपना ही स्वार्थ-सिद्धि करना मानवता नहीं वरन् पशुता है, गुप्त जी के मत से :

‘यही पशु प्रवृत्ति है कि आप-आप ही चरे।’

अतः परहित ही हमारा सच्चा धर्म है जो कि मानवता का लक्षण है। परहित एक महान् और मानवोचित भावना है। इस के द्वारा ही मानवता उज्ज्वल होती है। अतः इसकी महत्ता अनन्त है। समस्त मानवीय गुणों में परहित को सर्वोच्च स्थान देने का एक कारण, तो यह है कि जन्म से लेकर के मृत्यु तक हम माता-पिता, गुरु, आदि न जाने कितनों के ऋणी बन जाते हैं जिनका कर्ज चुकाने हेतु हमें इस वृत्ति को धारण करना आवश्यक है। हम जितना ही दूसरों का हित करते हैं उतना ही दूसरों से हम सम्मान प्राप्त करते हैं। परोपकारी व्यक्ति सच्चाई और ईमानदारी को अपनाता है जिससे समाज में उसका यश बढ़ता है। सम्पूर्ण मानव-समाज की प्रगति इस पर ही निर्भर है। व्यक्तिगत जीवन में भी इस का बड़ा महत्त्व है। इसके बिना मनुष्य के गुणों का विकास सम्भव नहीं है। परोपकार से मनुष्य का हृदय निर्मल होता है और दया, क्षमा, दानशीलता इत्यादि गुणों से वह पूर्ण हो जाता है। परोपकार वह चमकीली कलई है जो मनुष्यों को उनके गुणों साहत चमका देती है। सब लोग परोपकारी को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। उसकी कीर्ति पताका युगों तक फहराती है।

मनुष्य अपने सामर्थ्य के अनुसार विभिन्न ढंगों से परहित कर सकता है। दूसरों प्रात सहानुभूति प्रकट करना ही परहित है। यह सहानुभूति किसी भी रूप में प्रकट की सकती है। परहित तन-मन और धन तीन प्रकार से किया जा सकता है। दुखियों, घायलों एवम् अपाहिजों की सेवा-सुश्रूषा तन (शरीर) से की जा सकती स अनाथालय, औषधालय, पाठशालाएँ गौशालाएँ और धर्मशालाएँ इत्यादि बना कर परहित किया जा सकता है। परहितार्थ तालाब, कुएँ खुदवाए जा सकते हैं। नल एवं बगीचे भी धन से ही लगवाए जा सकते हैं। किसी को संकट से बचा लेना, किसी को कुमार्ग से हटा लेना, किसी दुःख और निराश को सांत्वना देना-ये सब परहित के ही रूप हैं। कोई भी कार्य, जिससे किसी को लाभ पहुँचता है। परहित है, जो अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनेक प्रकार से किया जा सकता है।

हमारे इतिहास और पुराणों में परोपकारी विभूतियों के अनेक दृष्टान्त हैं। रन्ति देव, महर्षि दधीचि, शिवि और कर्ण आदि भी परोपकार के कारण मरकर भी जीवित हैं। महाराज हरिश्चन्द्र ने तो सम्पूर्ण राज्य ही दान में दे दिया। महर्षि दयानन्द ने तो प्राण घातक विष देने वाले पाचक जगन्नाथ को मार्ग व्यय के लिए धन देकर के उसकी रक्षा की थी।

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी ने अपनी दिव्यवाणी से ही समाज का बहुत उद्धार किया। सप्त ऋषियों ने भी वाणी द्वारा ही 'मरा' जाप का उपदेश देकर वाल्मीकि को पाप से छुड़ाकर सन्मार्ग पर चलाया। एकमात्र वाणी के आधार पर ही महात्मा गांधी ने जनता जनार्दन की सेवा की। सम्राट अशोक ने कुएँ, तालाब एवं नहरें खुदवाकर तथा वृक्ष लगवाकर जनता के साथ उपकार किया।

मानव ही नहीं अन्य स्थावर तथा जंगम प्राणी भी परहित में संलग्न दिखाई देते हैं। जटायु जैसे पक्षी ने भी परोपकार के लिए ही अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर दिया था। यह परहित की प्रवृत्ति वृक्ष एवं नदियों तक में पाई जाती है। उसकी गणना भी कबीर जैसे सन्त ने सज्जनों ही में की है।

वृक्ष कबहुँ नहीं फल भखें, नदी न संचें नीर।

परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर ॥

मायावी जगत् में आने के पश्चात् हमारा परम पावन कर्तव्य है कि हम निःस्वार्थ भाव से परहित की भावना को अपने हृदय में धारण करें। मन, वाणी अथवा कर्म से किसी को पीड़ा पहुँचाना हमारे जीवन के लिए कलंक स्वरूप है। इस जगत् के सम्पूर्ण कर्मों में परहित ही सबसे महान् धर्म है। अन्य सम्पूर्ण धर्म तो इसी के अनुगामी हैं। अतः महात्मा तुलसीदास जी का कथन अक्षरशः सत्य है-

'परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अघमाई'।